

# स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५३८ अंक-१७५, वर्ष-१५, अप्रैल-२०१२

अषाढ सुद १०, शनिवार, दि.१५-७-१९७८, वचनामृत - १०७  
पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, प्रवचन - ३८

१०६ चला न ? अब गुजराती में चलेगा, ये तो हिन्दीभाषी लोग आये थे न ! 'शाश्वत शुद्धिधाम ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य, उसकी दृष्टि प्रगट हुई तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है।' देखो ! सिद्धांत। वस्तु जो आत्मा है वह शाश्वत है, त्रिकाली है, उत्पन्न व ध्वंस रहित चीज है। उत्पन्न और व्ययरहित जो चीज-वस्तु शाश्वत है। आहा..हा..! उसे संयोग पर से दृष्टि हटाकर, राग पर से दृष्टि उठाकर, एक समय की पर्याय पर से दृष्टि उठाकर... सूक्ष्म बात है। शुद्धिधाम, शाश्वत शुद्धिधाम प्रभु वस्तु स्वयं ऐसी है। शाश्वत और शुद्धिधाम-शुद्ध का स्थल, शुद्ध का स्थान जिसमें से शुद्धि की फसल हो, अतीन्द्रिय आनंद की फसल हो, अतीन्द्रिय ज्ञान हो ऐसा जो शुद्धिधाम आत्मा है। ऐसी बात ! आहा..हा..!

शाश्वत त्रिकाली वस्तु है, कायमी चीज (है)। एक समय की पर्याय रहित चीज राग से तो रहित (है), संयोग सम्बन्ध से तो रहित (है) परन्तु एक समय की पर्याय से भी रहित (है)। आहा..हा..! ऐसा जीव को समझाना। क्या कहते हैं यह समझना मुशकिल पड़े।

यह भगवान शुद्धिधाम नित्य प्रभु तू ही हो, तेरे पास है, तू ही है वह। आहा..हा..! 'ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य' शाश्वत, शुद्धिका धाम, शुद्धि, पवित्रता, आनंद का धाम, स्थल... आहा..हा..! 'ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य..' जोरदार आत्मद्रव्य,

ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! 'उसकी दृष्टि प्रगट हुई तो...' अगर ऐसे शाश्वत शुद्धिधाम, बलवान, आत्म पदार्थ, वस्तु त्रिकाल उस पर दृष्टि हुई... आहा..हा..! अंतर्मुख शाश्वत तत्त्व पर दृष्टि हुई... आहा..हा..! उसका नाम सम्यक्दृष्टि। सूक्ष्मबात है, ऐसी बात है। आहा..हा..! भाई को तो बहुत अभ्यास था। उन्हें तो अभ्यास था। आखिर में स्थिति थोड़ी.. जबकि वह तो देह की स्थिति है। आहा..हा..! यह चीज !

देह के अस्तित्व में जिसकी मौजूदगी नहीं है, राग की अवस्था में जिसकी मौजूदगी नहीं है, जिसकी एक समय की पर्याय में अस्तित्व नहीं है। आहा..हा..! जिनका अस्तित्व शाश्वत है। यह अंतर में भगवानआत्मा की बात चलती है, हं ! आहा..हा..! वह शाश्वत शुद्धि का स्थल। आहा..हा..! ऐसा वह बलवान आत्मद्रव्य (है), जिसमें अनन्त अनन्त वीर्य व बल पड़ा है आहा..हा..! एक तरफ ऐसा कहना है कि आत्मवीर्य है और अनन्त बल का स्वामी स्वरूप ऐसा आत्मद्रव्य जिसने पकड़ा,



उसका वीर्य स्वरूप की रचना करे। एक तरफ ऐसा कहना है कि वीर्य है वह स्वरूप के पर्याय की रचना नहीं करता। आहा..हा..! गहन विषय (है)। सर्वज्ञ, सर्वज्ञ। प्रभु ! तू सर्वज्ञ है। जो सर्वज्ञ है वें पर्याय में हुए वे आये कहाँ से ? आहा..हा..!

यहाँ वह शाश्वत शुद्धिधाम पर दृष्टि आते ही बलवान आत्मद्रव्य होने से, आहा..हा..! **'उसकी दृष्टि प्रगट हुई तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है।'** आहा..हा..! शुद्ध त्रिकाली का जैसे ही स्वीकार हुआ कि शुद्ध नाम आनंद की दशा, सम्यग्दर्शन की दशा, शांति की दशा ईश्वरता की - प्रभुता की दशा, वह शुद्धता प्रकट होती ही है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। लोगों ने सब बाहर में इतना विपर्यास खड़ा कर दिया, जैसे यह बाह्य में त्याग किया और ऐसे बन गये, हम समकिति हो गये हम चारित्रवंत। आहा..हा..! भाई ! बापू ! इस वस्तु को कैसे कहना और कैसे समझना यह तो अलौकिक बात है। आहा..हा..!

इस शाश्वत शुद्धि का धाम-स्थल, उसकी दृष्टि होना यह कोई सामान्य बात है ? वह कोई बातों से, उपदेश से प्राप्ति हो ऐसी चीज है ? वह तो अंतरदृष्टि करे तब प्राप्त हो ऐसी चीज है। आहा..हा..! ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य.. आहा..हा..! उसकी दृष्टि प्रगट होने पर शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है। अतीन्द्रिय आनंद व अतीन्द्रिय ज्ञान का अंश प्रगट होता ही है। ऐसे शुद्धिधाम शाश्वत बलवान भगवान पर दृष्टि देते ही धर्म की वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट होती ही है। आहा..हा..!

देव-गुरु व शास्त्र की श्रद्धा या पंच महाव्रत के परिणाम, सो तो राग है। राग की श्रद्धा करना तो मिथ्यात्व है, राग मेरा स्वरूप है ऐसा मानना वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहा..हा..! परन्तु रागरहित चैतन्य शुद्धि का स्थल महाप्रभु, चैतन्यप्रभु, पूर्ण ज्ञान व आनंद से भरा। गुणवाला नहीं अपितु अनन्त गुण से भरा पदार्थ है। वह गुण भी शाश्वत, द्रव्य

भी शाश्वत (है)। आहा..हा..! जैसे यह द्रव्य शाश्वत है वैसे इसकी शक्तियाँ जो हैं अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, ये भी शाश्वत हैं। आहा..हा..! इससे अनन्त गुण का धारक गुणी उसपर दृष्टि आते ही शांति, आनंद व सम्यग्दर्शन और वीतरागी पर्याय प्रगट होती ही है। आहा..हा..! भगवान ! ऐसा मार्ग है, प्रभु ! जीवको अपनी महानता का भान नहीं है। पर की महिमा (लगती है)। संयोगों में या साधन की अनुकूलता हो तो इसमें इसप्रकार कि बच्चेलोग कमाई करने लगे, साधन अच्छाखासा हो जाये जब तो हमें निवृत्ति मिले। अरे ! भगवान क्या हुआ है तुझे यह ? आहा..!

तू तो राग से भी निवृत्त स्वरूप ही त्रिकाल हो। आहा..हा..! राग की तो यहाँ बात नहीं, शुद्धि का धाम कहा है इसे तो। आहा..हा..! शुद्धका, आनंद का कंद प्रभु है अंदर नित्यानंद दल और बलवान, जोरदार आत्मद्रव्य है। आहा..हा..! ऐसे बलवान का जिसने आश्रय लिया, ऐसे बलवान पर जिसने दृष्टि दी और ऐसी दृष्टि कि जिसने पूरे पूर्ण का स्वीकार किया उसकी शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है, प्रगट होती है। आहा..हा..! भाई ! ऐसी बातें हैं। साधारण स्त्रियों को तो समझना बारी कठिन पड़े। अभ्यास न हो उसे। आहा..हा..!

**'शुद्ध-पर्याय प्रगट होती ही है। विकल्प के भेद से शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती।'** आहा..हा..! जितना अंतर में विकल्प नाम राग उत्पन्न होता है, चाहे तो दया का, दान का, भक्ति का अरे..! परमेश्वर, परमात्मा की श्रद्धा का राग उत्पन्न हो, पंचपरमेष्ठी, गुरु, शास्त्र इसकी श्रद्धा का भी विकल्प उत्पन्न हो कि यह परमात्मा हैं, उस विकल्प से.. आहा..हा..! **'विकल्प के भेद से शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती।'** इससे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और शांति, वीतरागता प्रगट नहीं होती। आहा..हा..!

यह तो अभी याद आया था, अभी वह पढ़ा था। 'श्रीमद्' की ऐसी पंक्ति (थी)। 'सुखधाम अनन्त

सुसंत चही' उसमें शुद्धिधाम आया न ?

'श्रीमद् राजचंद्र' आत्मज्ञानी हो गये, गृहस्थाश्रम में थे, एक भव बाद मोक्ष होगा। ऐसी शक्ति थी। वैसे ज्योहरी थे, लाखों का कारोबार था, लेकिन सब पर, पर (भासित होता था) आहा..हा..! दृष्टि में तो पूर्णानंद का नाथ प्रत्यक्ष था। वे स्वयं कहते हैं कि अरे ! मेरा कुछ राग शेष बचा लगता है। आहा..हा..! पूर्णानंद की पूर्ण प्राप्ति के बीच उन्हें थोड़ी बाधा महसूस होती है। ऐसा थोड़ा राग अस्थिरता का, अस्थिरता का वह छूट नहीं रहा है। पुरुषार्थ की कमी है। आहा..हा..! क्या वह लिखा नहीं है वह रेगिस्तान का..? रेगिस्तान में, भूल गये भाषा स्मरण में नहीं आती ? महा रेगिस्तान प्रगट हुआ। बहुत त्वरा से प्रवास पूर्ण करना था परन्तु बीच में सहारा का रेगिस्तान (आया)। भाषा भूल जाते हैं। एकदम शुद्धि की दृष्टि पड़ी है न ! आहा..हा..! जिसमें से शुद्धिरूप पूर्णता प्रगट करने की भावना है फिर भी सहारा का रेगिस्तान... रेगिस्तान, कच्छ का रेगिस्तान है न ? केवल रेत ही रेत, पानी नहीं, पेड़ नहीं, पानी भी नहीं और पेड़ भी नहीं। आहा..! अरे..! सहारा का रेगिस्तान बीच में आया। पैरों में निकाचित थकान लगी। ऐसा आया है ? आहा..हा..!

अरे..! भगवान पूर्णानंद का नाथ शुद्धि के धाम में हम गये परन्तु स्थिर नहीं हो पाये, अभी भी स्थिरता नहीं कर सके हैं। इसलिये 'अशेष कर्म नो भोग छे भोगववो अवशेष रे...' ऐसा राग अभी कुछ अंश में बचा है, जो छूटता नहीं है, पुरुषार्थ की कमी है। आहा..हा..! 'तेथी देह एक धारी ने जाशुं स्वरूप स्वदेश' एकाद देह को धारण करना पड़ेगा ऐसा अभी लगता है। आहा..हा..! गृहस्थाश्रम में भाई! 'श्रीमद् राजचंद्र' मुंबई में गृहस्थाश्रम में जवाहरात का व्यवसाय (था)। आते थे, बैठते थे लेकिन अंतर से नहीं। नारियल में जैसे गोला छूटा पड़ जाता है, आहा..हा..! और

वह 'काचली' क्या कहते हैं 'काचली' को ? नरेटी। टूटकर जब गोला छूटा पड़ जाता है तब सिद्ध हो जाते हैं। सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान में जब तक काचलीमें से, नरेटीमें से गोला छूटा हो किन्तु अंदर होता है तबतक उन्हें समकिती और ज्ञानी कहते हैं परन्तु इसमें से पूर्णरूप से इसे तोड़कर पूर्ण सिद्धदशा प्राप्त हो... आहा..हा..! तब पर्याय में केवल परमात्मपद प्राप्त हुआ। अरे..! यह सहारा का रेगिस्तान आया, कहाँ आ गये।

हम पूर्णानंद के नाथ को प्राप्त करने...आहा..हा..! बहुत प्रयास है लेकिन प्रयास रुक गया है। राग की मंदता में थोड़े अटक गये हैं। आहा..हा..! सुखधाम अनन्त सुसंत चही, दिन-रात रहे तद् ध्यान मही, परशान्त अनन्त सुधामय जे, प्रणमुं पद ते वरते जय ते।

आहा..हा..! यह आखिरी पंक्ति है। देह छूटने के (पहले की) यह आखरी पंक्तियाँ। आहा..हा..! भाई को कहा, भाई ! छोटी उम्र, ३३ साल की उम्र, ३३ साल और चार महीने। भाई को (कहा), भाई ! 'माँ' को दुःखी मत होने देना। आहा..हा..! (ऐसी) वाणी निकली। माताश्री थे, पिताश्री थे, लड़के, स्त्री थे। भाई ! माँ को दुःखी मत होने देना। मैं अब स्वरूप में लीन होता हूँ। देह छूटने का काल आ गया है। मैं अभी अंतर अपने स्वरूप में लीन होता हूँ। कुर्सी पर बैठे थे, वहाँ से आराम कुर्सी में लेट गये। अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में दृष्टि देकर लीन हुए परन्तु अभी पूर्ण स्थिरता नहीं हुई है इसलिये एकाद देह अवधारण करना पड़ेगा। आहा..हा..!

ऐसा जो शुद्धि का धाम प्रभु परमात्म स्वरूप स्वयं ही है। आहा..हा..! परम आत्म, परम स्वरूप, परम भगवान (हूँ) ऐसी दृष्टि जैसे ही प्रगट हुई.. आहा..हा..! तो कहते हैं कि शुद्धदशा, धर्मदशा तब प्रगट होती है। धर्मी ऐसा जो शुद्धिधाम उसे अंतर

में स्वीकार करने से शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है। पूर्ण आश्रय लेने से पूर्ण शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, अल्प आश्रय लेने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। भगवान शुद्धिधाम का मध्यम आश्रय ले तो चारित्र आदि या (केवलज्ञान) आदि उत्पन्न होते हैं। आहा..हा..! अंतर में एकदम पूर्ण आश्रय होने पर एकदम सर्वज्ञ हो जाते हैं, सिद्ध हो जाते हैं। आहा..हा..!

ऐसा जो भगवान आत्मद्रव्य वह **'विकल्प के भेद से शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती।'** तू चाहे कितनी भी विकल्पवृत्ति कर, मैं शुद्ध-हूँ और पूर्ण हूँ और अभेद हूँ और अखण्ड हूँ व शुद्धिधाम हूँ और ऐसी विकल्पवृत्ति उठा ले (तो भी) इससे शुद्धि प्रगट नहीं होती। आहा..हा..! समझ में आया ?

**'एक को ग्रहण किया उसमें सब आ जाता है।'** भगवान अनन्तगुण का धाम, उसे जिसने दृष्टि में ले लिया, उसका जिसने आलंबन लिया... आहा..हा..! उस एक को जिसने ग्रहण किया उसमें सब आ जाता है। इसमें से ज्ञान हो, दर्शन हो, चारित्र हो, आनंद हो, सब हो, आहा..हा..! एक को जाना उसमें सब आ जायेगा। इसे जाने बिना तू चाहे लाख बातें जान ले, शास्त्र की या जगत की बातें आहा..हा..! इसमें से शुद्धता नहीं प्रगट होगी। आहा..हा..! भीतर में पूर्णानंद के नाथ को एक को जिसने पकड़ा.. आहा..हा..! इसमें सब आ गया। क्योंकि इसमें तो केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि सब पड़ा है। आहा..हा..!

**'दृष्टि के साथ रहा हुआ सम्यग्ज्ञान विवेक करता है।'** क्या कहा इसमें ? वस्तु जो शुद्धि का धाम, स्थल इसमें जिसकी दृष्टि गई और उसे पकड़ा, उसने एक को जाना उसमें सब आ गया। भगवानआत्मा को जाना उसने सब जान लिया। आहा..हा..! क्यों ? कि **'दृष्टि के साथ रहा हुआ सम्यग्ज्ञान..'** आहा..! ऐसी दृष्टि हुई उसने सब प्रगट दृष्टि में लिया, अब पर्याय में कमी है, जो भी

राग बचा है उसे दृष्टि के साथ रहा ज्ञान उसका विवेक करके जानता है। जानता है कि है, अभी भी राग है, अभी भी मैं पूर्ण शुद्ध नहीं हुआ। पूर्ण शुद्ध को पकड़ा है जरूर किन्तु अपूर्णता है जिसे दृष्टि जानती नहीं।

दृष्टि का विषय तो त्रिकाली है। परन्तु दृष्टि होने पर जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान त्रिकाल को भी स्वीकार करता है और वह ज्ञान अपूर्णता (है), अभी मेरे में पुरुषार्थ की कमी है (ऐसा भी जानता है)। आहा..हा..! जितना तीव्र आश्रय लेना चाहिये उतना है नहीं। ऐसा ज्ञान समय समय में जितना रागादि है और शुद्धाशुद्धि की अपूर्णता है उसे जानता है, जानता है। वह ज्ञान ऐसे नहीं जानता कि, मैं पर्याय में पूर्ण हो गया। आहा..हा..! समझ में आया ? ऐसी बातें अब संप्रदायवाले लोग कहते हैं कि सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, पौषध करो। आहा..हा..! बापू ! मार्ग कोई दूसरा (है) भाई !

जिसमें कर्तृत्व के विकल्प को भी जहाँ अवकाश नहीं है। आहा..हा..! अरे..! जिन्हें गुण-गुणी के भेद का विकल्प है इससे भी जो प्राप्त न हो ऐसा है। आहा..हा..! वह अन्य किस प्रयत्न से प्राप्त होगा ? भाई ! पंचमकाल हो या चतुर्थकाल हो या नरक का काल हो या तिर्यच का काल हो.. आहा..हा..! परन्तु भगवान शुद्धि का धाम तो शाश्वत सर्वत्र स्वयं ही पूरा पड़ा है। आहा..हा..! उस स्थल में जानेपर उसकी निर्मलदशा प्रगट होती है, होती ही है और दूसरे किसी भी विकल्प से प्रगट नहीं होती। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..!

ऐसी बातें हैं इसलिये कठिन लगती हैं। अभी कोई आया था। एक थे, कहा ! बापू ! सम्यग्दर्शन भाई ! अरे..! परन्तु समझ में आये नहीं, सुना नहीं कभी उनको ऐसा लगता था कि, ये त्याग करते हैं इतना-इतना उनको... अरे..! बापू! क्या कहे ? भाई ! आहा..हा..! किसका त्याग ? भाई ! ये स्त्री, परीवार छोड़े, घर छोड़ा (उस मान्यता में

तो) धर्म छोड़ा है। अरे..! बापू तुझे पता नहीं है। (वे बोले) हमारे में किसीको सम्यग्दर्शन नहीं है यह आपको कैसे पता चले ? प्रभु ! क्या कहे ? बापू! आहा..हा..! अरे..! बापू! श्रुतज्ञान क्या चीज है ? आहा..हा..! श्रुतज्ञान में तो केवली की पहचान भी हो जाती है। ऐसा श्रुतज्ञान कहाँ, कैसे सम्यग्दर्शन होता है या नहीं होता है, ये सब श्रुतज्ञान जान सकता है। वह कोई अवधिज्ञान या मनःपर्यय ज्ञान हो तो ही जान सके, ऐसा नहीं है।

इसलिये कहा न ? 'एक को ग्रहण किया उसमें सब आ जाता है।' आहा..हा..! इसके ज्ञान में सारा विवेक आ गया। वह ज्ञान जहाँ-जहाँ अपनी दशा अपूर्ण है उसे जान लेता है। आहा..हा..! सामनेवाले की दशा में मिथ्यात्व किस प्रकार से

### (पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन)

जो स्थिति होती है वैसी तीव्र पुण्य के उदयवाले की, तीव्र पाप के उदयवाले की स्थिति करीब करीब नहीं देखी जाती। प्रायः ऐसी स्थिति नहीं होती। यह तो सर्वसामान्य में इधर-उधर नज़र करेंगे तो सब पता चल जायेगा। पाप के उदयवाले भी अपने परिचय में, रीशतेदारों में होते हैं, पुण्य के उदयवाले भी अपने संबंध में होते हैं। खुद अपना विचार करे तो भी कुछसमय अनुकूलता का आ जाये, सब इच्छानुसार होने लगे तो इतना एकाकार होकर सारे कामों में जूट जाता है। तीव्र प्रतिकूलता आनेपर उसे अनुकूल करने में लग जाय। खुद से लेकर अगलबगल के सारे लोगों का विचार करे तो यह समझा जा सकता है। अनुभव से समझा जा सकता है।

कहते हैं कि, आत्मा का जो निराकूल जीवन है, शांत जीवन है, शांतिका जो ज्ञान व सुख का जीवन है वह ज्योति छूट गई है। उसकी गरदन मरोड़कर खुद अपने आपका ही खून कर डाला है। शांति का निकंदन निकल जाता है और पुण्य-पाप के परिणाम में एकाकार हो जाता है।

है उसे भी जान लेता है। ऐसा जो सम्यग्ज्ञान दृष्टि के साथ हुआ उसका पूरा विवेक ज्ञान करता है। पर्याय में अभी अल्पज्ञ हूँ। आहा..हा..!

एक तरफ से ऐसा कहना कि केवलज्ञान प्रत्यक्ष जानता है और श्रुतज्ञान परोक्ष जानता है, परन्तु पूरा जानता है ऐसा कहा। एक तरफ ऐसा कहा कि श्रुतज्ञान की पर्याय केवलज्ञान की पर्याय के अनन्त वे भाग में है। आहा..हा..! किस अपेक्षा से ? समझ में आया ? उसे प्रत्यक्ष हुआ नहीं इसलिये उसे अपूर्ण व अनन्तवे भाग में गिनने में आया है। आहा..हा..! ऐसा जो भगवानआत्मा उन्हें दृष्टि हुई साथ में ज्ञान हुआ, तो विवेक करता है आहा..हा..! १०७, १०७ (बोल पुरा) हुआ। क्या कहते हैं इसे ? पेरोग्राफ ? बोल, १०७ बोल आहा..हा..!

यह जीव को समझ में आना चाहिये। अपने आत्मा की शांतिका खून करके जितना बाहर जाता है उतने प्रमाण में। और इसमें आत्मशांति का खून कहो या आत्मा का खून कहो, दोनों एक बात हैं।

मुमुक्षु :- अभी हननक्रिया...

पूज्य भाईश्री :- हननक्रिया... हननक्रिया हो गई। हनन करता है। इसे भावहिंसा अथवा स्वहिंसा कही है। जैनदर्शन में उसे स्वहिंसा कही है अथवा खुद की अदया। खूद अपने लिये निर्दय होकर, निष्ठुर, कठोर परिणाम करके शांतिका घात करते हैं। ऐसे खुद की दया नहीं पालन करनेवाले अन्यजीवों की दया का पालन क्या करेंगे ?

'श्रीमद्जी' ने बहुत शुरुआत में दस वैकालिक में से एक बात ली है कि, जो जीव जीव के स्वरूप को नहीं जानता। जो साधु, ऐसा वहाँ लिया है। जो साधु जीव के स्वरूप को और अजीव के स्वरूप को नहीं जानता वह संयम के स्वरूप को कैसे जानेगा ? ऐसा लिया है। यानी कि जो खुद की दया का पालन नहीं समझता वह दूसरे की दया क्या पालेगा ? ऐसा प्रश्न उठाया है। दसवैकालिक में प्रथम सूत्र ऐसा लिया है। इसके लिये अब विशेष बात आगे करेंगे।

### सत् साहित्य प्रकाशन विगत

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट द्वारा पीछले तीस वर्षसे सत् साहित्यका प्रकाशन कार्य नियमितरूपसे चल रहा है। इस प्रकाशनमें पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनों तथा पूज्य भाईश्री शशीभाई के शब्दशः प्रवचन प्रकाशित किये जाते हैं। हालमें निम्नलिखित पुस्तकों का कार्य संपन्न हुआ है उसकी विगत नीचे दी गई है।

पुस्तक के नाम	अंदाजित खर्च
<b>(परमात्म प्रकाश ग्रंथ पर पूज्य गुरुदेवश्री के धारावाही प्रवचन)</b>	
भाग-१ (कम्प्यूटरमां फीड हुए हैं)	१५००००/-
भाग-२ (कम्प्यूटरमां फीड हुए हैं)	१५००००/-
भाग-३ (कम्प्यूटरमां फीड हुए हैं)	१५००००/-
भाग-४ (कम्प्यूटरमां फीड हुए हैं)	१५००००/-
भाग-५ (कम्प्यूटरमां फीड हुए हैं)	१५००००/-
पूज्य गुरुदेवश्री के श्री समयसार ग्रंथ पर के १५वीं बार के धारावाही प्रवचनों को कम्प्यूटरमें फीड करने का काम चल रहा है। उनमें से एक भाग का काम पूर्ण हो गया है।	
<b>(बहिनश्री के वचनमृत ग्रंथ पर पूज्य भाईश्रीके धारावाही प्रवचन)</b>	
अध्यात्म सुधा भाग-६ (प्रुफ रिडींग चल रहा है।)	१५००००/-
अध्यात्म सुधा भाग-७ (कम्प्यूटरमें फीड हुए हैं)	१५००००/-
अध्यात्म सुधा भाग-८ (कम्प्यूटरमें फीड हुए हैं)	१५००००/-
अध्यात्म सुधा भाग-९ (कम्प्यूटरमें फीड हुए हैं)	१५००००/-
<b>(श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथ पर पूज्य भाईश्रीके धारावाही प्रवचन)</b>	
राज हृदय भाग-६ (प्रुफ रिडींग चल रहा है।)	१५००००/-
राज हृदय भाग-७ (कम्प्यूटरमें फीड हुए हैं)	१५००००/-
राज हृदय भाग-८ (कम्प्यूटरमें फीड हुए हैं)	१५००००/-
राज हृदय भाग-९ (कम्प्यूटरमें फीड हुए हैं)	१५००००/-
<b>(अनुभव प्रकाश ग्रंथ पर पूज्य भाईश्री के धारावाही प्रवचन)</b>	
भाग-१ (कम्प्यूटरमें फीड हुए हैं)	१५००००/-
भाग-२ (कम्प्यूटरमें फीड हुए हैं)	१५००००/-

### निमंत्रण

पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी की १०१वीं जन्मजयंति प्रसंग सोनगढ़ स्थित 'गुरु-गौरव' स्मारक भवनमें दि.३०-४-२०१२ से दि.२-५-२०१२ पर्यंत अत्यंत उल्सापूर्वक मनाया जायेगा। उस प्रसंग पर रखे गये धार्मिक कार्यक्रम निम्नरूप से हैं। इस प्रसंग पर समक्ष मुमुक्षु भाई-बहनों को पधारने का भावभरा हार्दिक निमंत्रण है। आनेवाले मुमुक्षु अपने आगमन की सूचना संस्था के कार्यालय में करे यही विनंती।

- आयोजक, श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, भावनगर

### पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी की १०१ वीं जन्मजयंति प्रसंग पर धार्मिक कार्यक्रम

दि.३०-४-२०१२ से दि.०२-०५-२०१२

सुबह : ५:४५	पूज्य बहिनश्री के निवासस्थान पर ओडियो तत्त्वचर्चा
६:३० से ७:१५	जिनमंदिरमें पूजा
७:३० से ८:००	चाय-पानी, नास्ता (समिति में)
८:३० से ९:३०	स्वाध्याय मंदिरमें पूज्य गुरुदेवश्री का टेप प्रवचन
१०:०० से ११:००	गुरु-गौरव स्मारकमें पूज्य भाईश्री शशीभाई का टेप प्रवचन
११:३० से १२:००	भोजन
दोपहर : ३:०० से ४:००	पूज्य गुरुदेवश्री का टेप प्रवचन (स्वाध्याय मंदिर में)
४:१५ से ५:१५	पूज्य सोगानीजी का गुणानुवाद 'गुरु गौरव' में.
शाम : ६:०० से ७:००	भोजन
रात्रि : ८:०० से ९:००	स्वाध्याय मंदिरमें पूज्य गुरुदेवश्री का टेप प्रवचन
९:१५ से १०:१५	गुरु-गौरवमें सांस्कृतिक कार्यक्रम, भक्ति.

पूज्य सोगानीजी की १०१ वीं जन्मजयंति के उपलक्षमें 'गुरु-गिरा गौरव' भाग-२ (हिन्दी) की अर्पण विधि दि.२-५-२०१२ के मंगल दिन पर की जायेगी।

कार्यक्रम स्थल :- गुरु-गौरव, पूज्य निहालचंद्र सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़

आयोजक :- श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणोकवाडी, भावनगर





**श्री परमागमसार वचनामृत-४७५-४७६ पर  
पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन, प्रवचन  
नं.२७१ (दि.११-२-१९८४, भावनगर)**

४७५, शुरुआत से ले ले, फिर से। 'समयसार' की ७२ वीं गाथा के प्रवचनमें से है। 'भाई! तुझे दुःख का पंथ छोड़ना हो और सुख के पंथ में आना हो तो, पुण्य-पाप के भाव दुःखरूप है और मेरा स्वरूप आनंदमय है - ऐसे अभिप्रायपूर्वक पुण्य-पाप के भावों से पीछे पलट।' क्या कहते हैं ? कि अगर पुण्य और पाप के परिणाम में तुझे हर्ष होता है वह हर्ष तेरा अभिप्रायपूर्वक है।

एक दृष्टांत ले तो, किसी भी प्रकार से अभिप्राय में इष्ट-अनिष्टपना निश्चित किया रहता है। पदार्थों की छँटनी ऐसे कर रखी है कि, इतने पदार्थ मुझे अनुकूल है यानी कि सुखरूप है। कुछएक प्रकार के संयोग व पदार्थ मुझे प्रतिकूल है यानी कि दुःखरूप है। ऐसा अभिप्राय तो जीव को पक्का होता है। फिर उदय जैसा आता है, अनुकूलता का या प्रतिकूलता का वह अपने अभिप्राय अनुसार, तब तीव्र रसपूर्वक या एकाकार परिणाम से वह उसमें प्रवर्तता है। इतनी एकाकारता हो जाने का कारण और आंशिक जागृति नहीं रहने का कारण उसका उलटा अभिप्राय है, जिसमें से वह पीछे नहीं हटा। विचार द्वारा भी जीवने अपने उलटे अभिप्राय को पलटा नहीं है। अतः सुख के साधन और सुख के कारण में वह एकरूप हो जाता है और दुःख के कारण में, अपनी कल्पनानुसार दुःख के कारण में वह तथारूप एकाकार हो जाता है।

ये मेरे आत्मा को इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे कोई लाभ-नुकसान का इसमें कारण नहीं है। मैं बिलकुल इससे भिन्न हूँ। केवल ज्ञानमय

अस्तित्व मेरा है और इस ज्ञानमयता के कारण बिलकुल भिन्न हूँ ऐसी भीतर में जागृति नहीं रहती है। इसतरह अभिप्राय को पलटा न होने से लीन होकर प्रवर्तता है।

इसमें दो Stage लिये हैं पूरे वचनामृत में भेदज्ञान होने के पूर्व के। कहते हैं न कि वास्तविक, पारमार्थिक भेदज्ञान। वास्तविक भेदज्ञान नाम पारमार्थिक भेदज्ञान। ऐसा होने से पहले तू अभिप्राय में पुण्य-पाप के भाव से पीछे हट जा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यानी कि वर्तमान जो परिस्थिति है इसमें क्या कार्य होना चाहिये ? सीधी यह बात ली है कि, ये सत्सास्त्र का स्वाध्याय आदि जो प्रक्रिया है, जो भी व्यवहार है, इसमें अभिप्रायमें से, पुण्य-पाप से पीछे हट।

अधिकांश जीवों का तो पाप से पीछे हटनेका अभिप्राय होता है, परन्तु पुण्य से पीछे हटने का अभिप्राय नहीं होता। इसलिये परिस्थिति ज्यों की त्यों रहती है। तत्त्वदृष्टि से उसकी परिस्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता यानी कि तत्त्वदृष्टि से बदलाव आना इसे कहते हैं कि, मिथ्यात्व छूटकर सम्यक्त्व प्रगट होना, ऐसा बदलाव परिणाम में नहीं होता।

अतः सीधा, सरल Total लगाया है कि, 'दुःख का पंथ छोड़ना हो...' दुःख का रास्ता छोड़ना हो 'और सुख के पंथ में आना हो...' अनेक प्रकार के, अनन्त प्रकार के दोष व दुःख की परम्परा छोड़नी हो, निराकूल सुख में आना हो तो अभिप्राय में प्रथम पुण्य-पापभाव दुःखरूप है, मलिन हैं और दुःखरूप हैं, मेरा स्वरूप तो आनंदमय है, ज्ञानमय



है ऐसे अभिप्राय को बदल दे। और ऐसे अभिप्रायपूर्वक पुण्य-पाप के भाव से पीछे हट जा। यहाँ प्रथम अभिप्राय से पीछे हटने की बात है, बाद में भेदज्ञान शुरू करने की बात है। इसके पहले भेदज्ञान शुरू नहीं होता।

मुमुक्षु :- विचारपूर्वक अभिप्राय...

पूज्य भाईश्री :- विचारपूर्वक। मलिन भावों को, दुःखरूप भावों को पहचानकर, जो कि स्थूल परिणाम हैं, वरना आत्मा का जो स्वभाव है सो तो सूक्ष्म विषय है जबकि पुण्य-पाप के परिणाम हैं, ये स्थूल विषय हैं। उसमें दुःखपना जानकर इसमें जो आकुलता होती है इसे जानकर इससे अभिप्राय में तू पीछे हट जा। वे करने योग्य नहीं हैं, कर्तव्य नहीं है। होते हो तब भी अपने अभिप्राय से विरुद्ध होते हो तब ही इसका निषेध आता है। निषेध किस बात का आता है जीव को ? कि खुद ने अभिप्राय में जो स्वीकार किया हो, इससे विरुद्ध परिणाम जब होने लगे तब जीव को निषेध आये बिना नहीं रहता। अगर निषेध नहीं आता है, पुण्य-पाप के परिणाम का अगर जीव को निषेध नहीं आता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि, अभिप्राय से जीव अभी भी पीछे नहीं हटा।

मुमुक्षु :- पहचानपूर्वक पीछे हटे।

पूज्य भाईश्री :- पहचानपूर्वक पीछे हटना चाहिये यह इसकी खास बात है। ऊपर-ऊपर से पुण्य-पाप का निषेध करने योग्य है ऐसा अभिप्राय रखे और परिणाम में निषेध न आये तो अभिप्राय में क्या फर्क हुआ ? विचार से भी आपका मत बदल जाना चाहिये, आपका झुकाव बदल जाना चाहिये। इतनी हद तक, इतनी हद तक विचार व अभिप्राय की स्थिति में पहुँचना चाहिये जब तो आगे का कार्य हो वरना भेदज्ञान नहीं हो सकता, इतना लिया है।

अभिप्राय में पीछे हट और 'श्रद्धा में पुण्य-

पाप के भाव से पीछे मुड़;...' तेरा विश्वास ऐसा नहीं होना चाहिये कि ये पुण्य-पाप के भाव मुझे हितकर या सुखकर है। श्रद्धा तो जिसमें सुख लगे उसकी वह श्रद्धा करती है। जिसमें जिसको सुख लगे, हित लगे उसकी जीव श्रद्धा करता है। इसप्रकार श्रद्धा का विषय, श्रद्धा का परिणामन सूक्ष्म है। परन्तु इस तरीके से समझा जा सकता है कि, जो आपको हितकर लगता है, जो आपको कर्तव्य लगता है, सुखकर लगता है, वहाँ आपकी श्रद्धा है यह निश्चित होता है। आप इसकी श्रद्धा करते हो। श्रद्धा करते हो मतलब आत्मारूप करते हो। श्रद्धा अभेदता करती है, श्रद्धा में भेद नहीं उठता। फिर तो वही आपका आत्मा हो गया। इसे फिर जीव बदलना नहीं चाहता।

इसलिये ऐसा कहते हैं कि अनादि से पुण्य-पाप के परिणाम तू करता आया है, कषाय की तीव्रता व कषाय की मंदता। कषाय की मंदता को पुण्य कहते हैं और कषाय की तीव्रता को पाप कहते हैं। ये दोनों प्रकार के परिणाम तू करता आया है इतना ही नहीं तेरी इसमें श्रद्धा है कि ये करने योग्य है। इसकी तुझे श्रद्धा है ऐसा कहते हैं। इन परिणामों में से कुछ एक परिणाम ऐसे हैं जो ठीक हैं और कर्तव्यरूप हैं ऐसा तुने अपने अभिप्राय में भी इस बात को मजबूत कर रखी है, इसमें फर्क हो जाना चाहिये। पीछे हट जा ऐसा कहते हैं। फर्क आ जाना चाहिये मतलब इससे पीछे हट जा।

'शुभाशुभ भाव तो मैला हैं, और प्रभु निर्मलानन्द है- जिसे ऐसा यथार्थ भेदज्ञान हो उसे आस्रव से निवृत्ति होगी ही।' यह गाथा का विषय है। ७२वीं गाथा का विषय है कि, आस्रवों से जीव कब निवर्तन को प्राप्त होता है ? कि, जब पारमार्थिक या यथार्थ भेदज्ञान हो तब जीव आस्रवों से निवृत्त होता है। ऐसा यथार्थ भेदज्ञान कब हो ? कि जब ऐसे परिणाम मलिनभाव हैं, मैलरूप हैं

- ऐसा इसका अशुचिपना मालूम हो और भगवानआत्मा है वह आनंदस्वरूप है, केवल ज्ञान की ही मूरत है, केवल आनंद की ही मूरत है ऐसा जब दो के बीच का फ़र्क क्या है वह मालूम हो तब। क्या कहा ?

**'शुभाशुभ-भाव तो मैल है, और प्रभु निर्मलानंद है...'** निर्मलानंदरूप है। आनंदरूप माने यह कषाय का आनंद नहीं परन्तु निर्मल आत्मिक आनंदरूप है। **'जिसे ऐसा यथार्थ भेदज्ञान हो उसे आस्रव से निवृत्ति होगी ही।'** जीव का ऐसा स्वभाव है कि, जीव का स्वभाव सुख व आनंद व पवित्रता होने से, स्वच्छता इसका स्वभाव होने से दुःख, मलिनता। मलिनता मतलब अपवित्रता और दुःखमयपना। ये जब जीव, को पता चलता है तो अवश्य इससे हटे बिना नहीं रहता। सहज ही हटता है, पीछे हटता है।

जैसे अग्नि पर हाथ रखते ही विचार नहीं करता है कि यह गरम है, कितना गरम है ? कितनी डिग्री गरम है ? इससे जलन होती है तो स्पर्श होते ही वहाँ से हटता है कि नहीं हटता है ? वहाँ कोई विचार-विमर्श करने किसी के साथ रुकता है क्या ? कि, इसमें से हाथ हटा लूँ या नहीं हटा लूँ ? कब हटाऊँ ? जल्दी से ले लूँ या आहिस्ता-आहिस्ता लूँ ? इसकी Degree देखर बाद में लूँ या कैसे करूँ ? अग्नि है (यह जानते ही) यहाँ से हटता है।

ऐसा ही आस्रव के विषय में है। कौनसा जीव बंध के कारणरूप आस्रव से पीछे हटता है ? और क्या करने से वह पीछे हटे ? कैसे वह पीछे हटे ? इसका यह तात्त्विक विषय है। अगर जीव पुण्य-पाप के परिणाम, आस्रवरूप परिणाम हैं इसकी मलिनता व दुःखभाव को जाने और स्वरूप का ज्ञानानंदमयपना को जाने तो इससे भेदज्ञान करके, भिन्नता का ज्ञान करके पीछे हटे। इस भिन्नत्व में विपरीतता आ गई। वहाँ तीन बोल हैं।

अपने स्वरूप से पुण्य-पाप के भाव की

विपरीतता है। विपरीतता है मतलब उलटापना है। ये लोगों में नहीं कहा जाता कि, भाई ! इमसे ये उलटे चलते हैं। कोई कहते हैं न ! कि हमसे यह विपरीत चलते हैं, उलटे चलते हैं। कहते हैं कि तेरे घर में, तेरी पर्याय में। घर में मतलब ? पर्याय में ये पुण्य और पाप के परिणाम तेरे स्वभाव से उलटे चलते हैं। वे विपरीत हैं। स्वभाव से विपरीत हैं ऐसा तेरा स्वरूप हैं। अगर ऐसा इसका सही रूप समझ में आये तो इसके साथ तेरा जो एकत्व हो रहा है इससे तू पीछे हट जा, भिन्न हो जा। इसके अलावा भिन्न होने का कोई उपाय नहीं है। और आत्मा का हित होने का भी दूसरा कोई उपाय नहीं है। एक ही उपाय है।

फिर ऐसा लिया है। **'उसे आस्रव से निवृत्ति होगी ही।'** अगर ऐसा जाने कि शुभाशुभभाव यह मैल है, आत्मा तो पवित्र आनंद की मूर्ति है। **'ऐसा यथार्थ भेदज्ञान हो उसे आस्रव से निवृत्ति होगी ही।'** नहीं होने का प्रश्न नहीं है। उसकी निवृत्ति होगी, होगी और होगी ही। क्योंकि वह स्वभावगत हो गया। जैसे नुकसान से हटना स्वभावगत है, दुःख से हटना वह स्वभावगत है वैसे यह प्रत्यक्ष दुःखरूप हो गया। पुण्य और पाप के परिणाम जीव को प्रत्यक्ष दुःखरूप और मलिन जानने में आता है। और साथ-साथ इससे भिन्न होने का भाव होता है, हटने का भाव होता है। इसके साथ एकत्व का परिणाम नहीं हो सकता।

**'जो आस्रवों से निवृत्ति न हुई...'** अब ऐसा कहते हैं कि यह भेदज्ञान है न वही ज्ञान है। 'भेदज्ञान ही ज्ञान है बाकी बुरो अज्ञान। धर्मदास क्षुल्लक कहे हेमराज तू मान।' हेमराज को संबोधित करके लिखा है। यह भेदज्ञान ही ज्ञान है। सर्व शास्त्रों के अध्ययन का तात्पर्य यही है, शास्त्र पठन का गुण यही है। यह 'समयसार' के बंध अधिकार की ३७४ गाथा में लिया कि शास्त्र पढ़ने का गुण। गुण नाम लाभ। हमलोग कहते हैं न कि आपको इससे क्या गुण हुआ ? क्या लाभ हुआ ?

भिन्न आत्मा का ज्ञान होना, शुद्ध चेतनामय भिन्न आत्मा का ज्ञान होना ही शास्त्र पठन का गुण है।

मुमुक्षु :- भेदज्ञान माने ?

पूज्य भाईश्री :- भेदज्ञान मतलब इसकी जाति और मेरी जाति भिन्न-भिन्न है। ऐसा भिन्नत्व है। अनादि से जिसके साथ एकत्व किया है, ऐसे जो पुण्य-पाप के परिणाम, इससे मेरी जाति बिलकुल भिन्न है। ऐसे भीतर से भिन्न होना। ज्ञानमय अस्तित्व में अहंपना होना चाहिये। ज्ञानमय अस्तित्व में अहंपना होना, अहंभाव होना, और साथ-साथ प्रवर्तमान परिणाम में पुण्य-पाप के अंशों से भिन्नता का अनुभव करना। भाव से भिन्न होनेवाला द्रव्य से भिन्न होगा। तैरने का कहते हैं न ? संसार तिर जाना। 'संसार इति संसार' स्वभाव से च्युत होकर पुण्य-पाप के भाव में एकत्व करता है वह संसार है। इसीलिये द्रव्यलिंगी मुनि को संसार तत्त्व कहा है। पंचमहाव्रत समिति, गुप्ति अट्टाईस मूलगुण व निरतिचार जिनोक्त व्यवहार को निरतिचार पालन करनेवाले को संसार तत्त्व क्यों कहा ? कि उनके जो आस्रव के परिणाम हैं, वे सारे आस्रव के परिणाम हैं उनके साथ वहाँ वे एकत्व करते हैं। वह कर्तव्य है और ऐसा करने से मुझे लाभ होगा, ऐसा इसके साथ प्रगाढ़ एकत्व होता है। अतः वह स्वभाव के अंदर आ नहीं सकते ! स्वभाव के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यरूप परिणाम से वह नहीं परिणमन करता। अतः वह च्युत होकर जाता है। अच्छी तरह च्युत हो जाता है। पूरा का पूरा वह पुण्य के परिणाम में एकाकार होता है, लीन होता है। उसे ही सर्वस्व मानता है, उसे ही सर्वस्वरूप से उपादेय जानता है यानी कि उसीकी श्रद्धा करता है।

'समयसार' की एक गाथा है कि, पुण्य को श्रद्धता है। जाने न हेतु मोक्ष का। जो बंध का हेतु है उसकी वह श्रद्धा करता है और मोक्ष के हेतु को वह नहीं जानता। इसलिये वह संसार में चिरकाल पर्यंत, संसार में ही परिभ्रमण करता है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- परिणाम श्रद्धा से व ज्ञान से। श्रद्धा द्वारा अहंपना करना, ज्ञान द्वारा अहंपना करना। नींव की मुख्य बातें दो हैं। जो भाव पुण्य-पाप के परिणाम में अहंपना करता है वही भाव पलटकर अपने स्वरूप अस्तित्व में अहंपना करता है कि, जहाँ वास्तव में खुद का अस्तित्व है, जहाँ त्रिकाल खुद का अस्तित्व है। पुण्य और पाप के परिणाम में त्रिकाल जीव का अस्तित्व नहीं है। विजातीय, दुःखमय अस्वाभाविक परिणाम, कृत्रिम परिणाम, विरुद्ध जाति के परिणाम, स्वभाव का तिरस्कार करनेवाले परिणाम, परमात्मपद का तिरस्कार करनेवाले परिणाम (हैं), उसमें जीव जो अहंपना करता है वही उसके चार गति के परिभ्रमण का मूल है। अनन्त दुःख की परम्परा का वह मूल है। ऐसे दुःख के पंथ को छोड़कर सुख के पंथ पर आने के लिये यहाँ इस वाक्य की शुरुआत की है, बोल की शुरुआत इसीतरह की है, बोल का प्रारंभ इसतरह किया है। **'दुःख का पंथ छोड़ना हो और सुख के पंथ में आना हो तो...'** यह एक उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

पूरे 'समयसार' में भेदज्ञान का विषय धारावाही रूप से चला है। क्योंकि वह प्रयोजन है। जैसे व्यापार में अनेकविध प्रवृत्तियाँ होने पर भी प्रयोजन की विधिविधता नहीं है। प्रयोजन तो एकमात्र आर्थिक लाभ कैसे हो ? इतना ही प्रयोजन कायम रहता है। प्रवृत्ति चाहे भिन्न-भिन्न प्रकार की बदलती रहे तो भी, वैसे सब अधिकार में प्रयोजन का विषय यही लिया है। 'समयसार' का कोई भी अंश पढ़ लो, यह तात्पर्य निकलेगा। यह प्रतिपादन के पीछे मूलभूत दृष्टिकोण है ऐसा दिखता है। पूरे ग्रंथ के प्रतिपादन में ग्रंथ का तात्पर्य कायम बना रहा है और विषय प्रवाहित होता चला है, इस प्रकार से पूरा ग्रंथ है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- धारावाहीरूप से रहा है और

इस दृष्टिकोण से देखा जाये तो प्रतिपादन में असाधारण विशिष्टता है, विषय प्रतिपादन की असाधारण विशिष्टता है। फिर चाहे आस्रव का अधिकार चला हो, पुण्य-पाप अधिकार चला हो, या मोक्षअधिकार (चला हो)। मोक्षअधिकार में प्रज्ञाछैनी का विषय लिया, भेदज्ञान का विषय है। वरना मोक्षतत्त्व तो पूर्ण शुद्धिरूप है। पूर्ण शुद्धि का, अधिकार पूर्ण शुद्धि का है जबकि आचार्यदेव ने विषय लिया है भेदज्ञान का। क्यों ऐसा किया ? क्योंकि पूर्णशुद्धि का यही कारण है इसलिये ऐसा कहा। पूर्णशुद्धि इसी भेदज्ञान से होगी, इसीप्रकार से होगी, ऐसा ध्यान खींचने के लिये वह बात ली है। यानी कि, उस दृष्टिकोण को लेकर विषय का प्रतिपादन चलता है।

मुमुक्षु :- द्रव्यलिंगी को जो छूट गया वह विधि यहाँ से छूट गई ?

पूज्य भाईश्री :- यहाँ से। वहाँ से है कि सावद्ययोग का त्याग है मतलब पाप के परिणाम तो नहीं है। अगर पाप के परिणाम होते तो इसके फल में नौवीं ग्रैवेयक तक जाते नहीं। ये तो नौवीं ग्रैवेयक तक जाते हैं। सोलह स्वर्ग से ऊपर उनका जाना होता है। ये लोक की जगह है उसे गिवा कहते हैं। गिवा मतलब गरदन। संस्कृत शब्द है। गरदन के स्थान में जो भी स्वर्ग के स्थानक हैं, विमान है उन्हें ग्रैवेयक के विमान कहते हैं। इसमें से मिथ्यादृष्टि के उत्कृष्ट शुभ परिणाम का फल नौवीं ग्रैवेयक हैं, इससे ऊपर नहीं जाते। फिर इसके ऊपर तो पाँच अनुत्तर विमान है। वहाँ तो सब क्षायिक सम्यक्दृष्टि जीव होते हैं।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- हाँ, ग्रैवेयक के स्थान में हैं सोलह स्वर्ग।

मुमुक्षु :- सोलह स्वर्ग से ऊपर...

पूज्य भाईश्री :- हाँ, दूसरा-तीसरा तो नीचे रह गया न !

मुमुक्षु :- मिथ्यादृष्टि नौवीं ग्रैवेयक तक जाता है।

पूज्य भाईश्री :- उत्कृष्ट से उत्कृष्ट शुभ का वह फल है।

मुमुक्षु :- सम्यक्दृष्टि से भी ऊपर तक जाते हैं वे ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ। ऊपर का मतलब ? क्षेत्र अपेक्षा से, परिणाम अपेक्षा से नीचे हैं। वह क्षेत्र है।

मुमुक्षु :- यह भेदज्ञान होने का मूल क्या ?

पूज्य भाईश्री :- भेदज्ञान होने का मूल यह है कि, पुण्य और पाप के भाव दुःखरूप है, मलिन हैं और मेरे से विपरीत हैं, यह तीन बात जीव को अंतर में लगनी चाहिये। पुण्य-पाप के परिणाम हैं परन्तु इनके तीन पहलू लक्ष्यगत होने चाहिये कि इसमें आकुलता व दुःख है, ये परिणाम मलिन हैं। स्वयं का स्वरूप सुखरूप है। स्वरूप से पवित्र ज्ञानानंदमय है, और ऐसे भावों से स्वयं विपरीत है, भिन्न है। स्वभाव भिन्न-भिन्न है। पुण्य-पाप का जो कषायरूप स्वाद है, वेदन का विषय है न ? अनुभव का विषय है, पुण्य-पाप के परिणाम में जो कषायरूप स्वाद है, इससे मेरा आस्वादन ज्ञान का आस्वादन भिन्न है, इसप्रकार इसकी विपरीतता, परस्पर की जो विपरीतता है, ये तीन Factor अगर जीव को पकड़ में आये तो जीव आस्रव से पीछे हटता है। वह जीव आस्रव से पीछे हटता है यानी कि संसार के अनंत जन्म-मरण से पीछे हटता है। यानी कि चारों गति के अनेक प्रकार के, विधिविध प्रकार के दुःखों से वह पीछे हटता है। इसका मूल यहाँपर है। पीछे हटने का मूल यहाँ है। वरना अन्य किसी भी प्रकार से छुटकारा नहीं है।

'ऐसा यथार्थ भेदज्ञान हो उसे आस्रव से निवृत्ति होगी ही। जो आस्रवों से निवृत्ति नहीं हुई।' यह इसका Indicator दिया। किसी भी बात

को लक्षण द्वारा नक्की करनी हो, कि जीव को ज्ञान हुआ है इसका लक्षण क्या ? क्योंकि शास्त्रज्ञान को लोग ज्ञान समझ लेते हैं। कई पुस्तकें पढ़ी हो, स्मृति तेज हो और इसलिये बहुत सी बातें समझा सकता हो, कहने की ऐसी योग्यता विशेष हो तो लोग उन्हें ज्ञान हैं ऐसा मानने की गलती कर लेते हैं। जबकि वह ज्ञान नहीं है।

ज्ञान तो उसे कहेंगे कि जो पुण्य-पाप के भाव से पीछे हटा हो-उसे ज्ञान कहते हैं। अगर यह जीव पुण्य-पापरूप आस्रव जो कि बंध का कारण है इससे पीछे नहीं हटता है तो उसे ज्ञान नहीं है। बस ! यह इसका indication है, दूसरा कोई लक्षण नहीं है।

ज्ञानका लक्षण क्या ? कि स्वयं पवित्र स्वभावी है वह मलिनता से पीछे हटता है। जो स्वयं स्वच्छ-पवित्र हो वह मलिनता को कैसे चाहेगा ? क्यों चाहेगा ? जैसे बाहर में भी कोई मलिनता नहीं चाहता, स्वच्छ रहना चाहता है तो यह अंतरंग भाव मलिनता है इसलिये अगर आस्रव से निवर्तन न हो, परिणमन में पुण्य-पाप के परिणाम से हटने की प्रक्रिया शुरू न हों, तो उसे पारमार्थिक भेदज्ञान हुआ ही नहीं। तो उसे भेदज्ञान हुआ है यह बात नहीं रहती। बाकी कितना भी ज्ञान हो वह सब अज्ञान है। ज्ञान नहीं अपितु सब अज्ञान है। जहाँ अज्ञान है वहाँ कोई भी बात सुलटी हो, यह सम्भव नहीं है। वहाँ उसका श्रद्धान भी विपरीत-मिथ्या श्रद्धान है और वहाँ उसका आचरण भी विपरीत और मिथ्या आचरण है। कोई बात उसकी सही नहीं है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- कहते हैं कि, भाई ! आपके स्वभाव में यह चीज़ नहीं है। आप पुण्य-पाप के मैल से रहित शुद्ध ज्ञानानंद, ज्ञान-आनंद-चेतनामय पदार्थरूप है, फिर आपको ऐसा करना यह प्रश्न कहाँ उठता है ? इससे तेरी अभेदता तो नहीं

है, वह आपके स्वभाव के साथ, आपके स्वरूप के साथ अभेद तो नहीं है। अभेद नहीं है, जो आपके स्वरूप से विपरीत है अथवा आत्मस्वभाव का, परमात्मपद का तिरस्कार करनेवाले हैं, फिर ऐसा करना यह प्रश्न कहाँ उठता है ? हो जाना दूसरी बात है। परन्तु करने का प्रश्न कहाँ रहा ? करना हो तो शुद्धात्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम करो न !

परिणाम करने हैं ऐसा आप कहते हो तो शुद्ध आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र के, निराकूल आनंद, सुख के परिणाम कीजिये। इसमें तो दुःख है। फिर उसे करना यह प्रश्न ही कहाँ उठता है ? उसे कर्तव्य जानकर तो इसके साथ एकत्व करके संसार परिभ्रमण करते हैं। इसके लिये तो द्रव्यलिंगी का दृष्टांत लिया।

मुमुक्षु :- मिथ्यात्व छोड़ना कहाँ से ?

पूज्य भाईश्री :- इसीलिये तो प्रथम अभिप्राय बदलने का कहते हैं। विचार करके नक्की कर कि, तेरा आत्मा का ऐसा स्वरूप है ? जो पुण्यादि परिणाम होते हैं उस रूप तेरा आत्मतत्त्व है ? उसमें तो वह है नहीं। जो तेरा स्वरूप नहीं है, जो तेरी चीज़ नहीं है, उसे पकड़ने से क्या फायदा ? उसे पकड़ने से तों केवल नुकसान है। फायदा नहीं परन्तु नुकसान है।

आखिर में कोई भी कार्य करना है वह तो सुख के लिये करना है न ? जगत का कोई भी कार्य करने के पीछे हेतु क्या है ? प्रयोजन क्या है ? कि, सुख की जरूरत है। तो पहले सुख का स्वरूप तो नक्की कर। तात्त्विकरूप से तुझे उस दुःख में सुख की कल्पना होगी, तो संभव है कि वह तुझे दुःखरूप नहीं भी दिखे। परन्तु आज नहीं तो कल वह तुझे दुःखरूप दिखेगा, दिखेगा और दिखेगा ही। यह परिस्थिति है। वास्तविक परिस्थिति है। ४७५ बोल पूरा हुआ।

४७६। ४७६ के अंदर है। 'बहिनश्री के

वचनमृत' बोल ३८७ नंबर के प्रवचनमें से। ३८७ बोल का विषय क्या है ?

'आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है। उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं। देखने जैसा सबकुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सबकुछ, तेरे अपने अजायबघर में ही है, बाह्य में कुछ नहीं है। तू उसीका अवलोकन कर न !' देखो ! क्या आया ? 'उसके भीतर एकबार झाँकने से भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा। वहाँ से बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं। बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य...' और विस्मयता, अहोभावपना, महिमा का भाव 'टूट जायगा।' चकनाचूर हो जायगा। 'तू पर से विरक्त हो जायगा।' केवल अमृत भरा है! विषय कैसा लिया है ! इसपर 'गुरुदेवश्री' का प्रवचन चला होगा इसमें से यह ४७६ वाँ बोल है।

४७७ 'अरेरे! जहाँ पाँच-पचास हजार रुपये मिल जायें तो (अज्ञानी) हर्षित हो जाता है, पर सच में तो वह रो रहा है।' यह दुनियादारी में जो बनता है, जीवको आर्थिक प्रयोजन है। मोक्षार्थीपना आने से पहले सर्व संसारीजीव को धनार्थीपना होता है। धंधा, व्यापार, कारखाना, व्यवसाय करनेवाले तो धनार्थी हैं ही परन्तु त्यागी हुए हो, उस धन का त्यागकर त्यागी हुए हो, परन्तु भीतर में अनुकूलता की चाहत हो, तो उस अनुकूलता में सब आ जाता है। मुझे अनुकूलता रहनी चाहिये, मेरी अनुकूलता बनी रहनी चाहिये। उसमें पूरा संसार पड़ा है।

जैसे एक गोबर का बड़ा पिण्ड मिले तो हर्षित होता है वैसे यह जीव अनुकूलता में हर्षित होता है। या लाख पचास हजार मिलने पर जो हर्ष होता है, ये सब एक ही जाति के परिणाम हैं, इसमें कोई जाति का फ़र्क नहीं है।

मुमुक्षु :- मान, सन्मान में अटका वह भी अनुकूलता में अटका।

पूज्य भाईश्री :- हाँ! वह अनुकूल लगा न ?

कोई मान दे वह उसे अनुकूल लगा। तो वे भी एक ही जाति के परिणाम हो गये। ये कोई दूसरी जाति के परिणाम नहीं है। कोई ऐसा कहे कि, भाई! आप बोलिये इतना दान दे दूँ। लाखों रुपये दान में दे दूँ, परन्तु मुझे मान मिलना चाहिये। आप यदि मुझे मान देंगे, मेरे मान का सन्मान समारम्भ हो, ये सन्मान समारंभ करते हैं कि नहीं ? कि इसने इतनी बड़ी रकम दान में दी है तो उनका सन्मान समारंभ करो, ये सब एक ही जाति के परिणाम है। उसको आत्मा नहीं चाहिये, उसको अन्य चीज़ चाहिये। आत्मा को छोड़कर उसको अन्यभाव व अन्य द्रव्य की जरूरत है। बस ! इसमें सब आ गया। एक ही जाति के परिणाम हैं। ये तो क्या है सबको समझ में आये इसलिये दृष्टांत देते हैं फिर तो जिसको जिस प्रकार का उदय हो।

'जहाँ पाँच-पचास हजार रुपये मिल जायें तो (अज्ञानी) हर्षित हो जाता है, पर...' ज्ञानी की नजर में 'सचमें वह हो रहा है।' इसके पीछे कितना दुःख है इसकी उसे समझ नहीं है। संकुचित दृष्टि में वह नहीं जानने में आता। यहाँ दीर्घदृष्टिवालों का काम है। सिर्फ २५-५० साल का विचार करे उसका काम नहीं है परन्तु अपना कायमी अस्तित्व है, इस अनन्तकाल के विषय में सोचे, ऐसे दीर्घदृष्टिवान जीव को यहाँ लिया है। पाँच-पचीस वर्ष का विचार करे वह तो संकुचित दृष्टिवान है। Short sighted है।

कोई घर में युवान लड़का हो, सुबह हजार रुपये दिये हो बोलकर कि, रख अपने पास तेरी जेबखर्ची के लिये। हजार रुपये रखना तेरे पास। शाम को आकर पिताजी को कहता है कि, पिताजी! और दो हजार दीजिये। तब पिताजी ने कहा कि, तुझे सुबह ही तो हजार दिये थे न ? तो वह बोला वह तो मैं ने कब के खर्च डाले। दोपहर होने से पहले ही खर्च हो गये। बेटा ! दो हजार

क्या बीस हजार ले जा इसमें भी कोई हर्जा नहीं है। पैसे की कोई कमी नहीं है। परन्तु खर्च करने का तेरा यह तरीका मुझे पसंद नहीं है। दो-चार घंटे में तुने हजार रुपये खर्च कहाँ कर दिये ? यह सवाल है। उनको विचार यों आता है कि इसके पीछे कोई गड़ बड़ी होगी तो ? कोई गलत रास्ता पकड़ लिया तो नहीं होगा ? शंका उठती है। पैसे का दुःख नहीं है। परन्तु उसे क्या समझाते हैं ? कि, देख बेटा ! इसीतरह तू खर्च करता गया तो ऐसे तो कुबेर का धनभंडार भी खत्म हो जाये। कल का विचार करना सीख। क्या कहते हैं उसको ? तुने तो शाम का भी विचार नहीं किया, परन्तु कल का विचार करने की आदत रख। आज एक दिन का विचार करने का कहेगा ? कल का विचार करते रहो, यानी कि तेरी आयु जो सौ-पचास वर्ष की है तब तक तेरी संपत्ति बनी रहे इतना विचार कर। खर्च करने पर भी कैसे संपत्ति बनी रहे इसका विचार कर, इसके पीछे इतनी बात है कि नहीं ?

वैसे यहाँ कहते हैं कि, हे संसारी प्राणी ! तू पचीस-पचास साल का विचार करता है, तेरे जीवन पर्यंत का, ज्यादा से ज्यादा तेरे बच्चों के भविष्य पर्यंत का। कितना विचार करता है ? सो-पचास वर्ष। परन्तु अनित्यता ऐसी है कि इसकी हयाति में कब संजोग बदल जायेंगे पता नहीं चलेगा। बहुत संकुचित दृष्टि का यह विषय हो गया।

बहुत दीर्घदृष्टि से विषय पर विचार करने से ऐसा कहते हैं कि, भाई ! इसमें जो तू हर्षित होता है जब अनुकूलताएँ उपलब्ध होती हैं, ज्ञानी कहते हैं कि हमारी नज़र में तेरा कल का रुदन दिखता है। तू अभी जो हर्षित हो रहा है इसे हम नहीं देखते। हम यह देखते हैं कि कल तू कितना रोएगा। इसे हम आज देख रहे हैं। तेरी जो यह संकुचित दृष्टि है उस पर हमारा यह

प्रहार है कि ऐसी संकुचित दृष्टि तू छोड़ दे। दीर्घ दृष्टि से विचार कर कि तेरा अस्तित्व कायम रहनेवाला है। कल के सुख के लिये करना क्या इसका अगर आज विचार नहीं करेगा तो तेरी कितनी बूरी हालत होगी ? सारे संसार के विध-विध प्रकार के दुःख से (तू घिर जायेगा) ऐसे अविचारी जीवों की ही ऐसी परिस्थिति है। ये पशु-पक्षी, तिर्यच प्राणी जो भी दिखते हैं वे सब जीव हैं कि नहीं ? ये वनस्पति में जीव हैं। आज तो यह स्वीकार करना पड़े ऐसी बात है। कहते हैं कि, उन सब की ऐसी स्थिति क्यों है ? ऐसी स्थिति को वे लोग क्यों प्राप्त हुए ? क्यों वे लोग दुःखी हैं ? उन लोगोंने भी तेरी तरह विचार नहीं किया था। आगे क्या होगा, इसका विचार नहीं किया ? कहते हैं कि उन बाह्य पदार्थों में, अनुकूलता में तेरा सुख नहीं है।

**‘आत्मा में अनन्त गुणों की अजायबी है...’**  
अनन्त सुख से लेकर अनन्त दिव्यगुणों की संपत्ति। कभी किसी भी प्रकार की आपत्ति या विपत्ति न आ सके ऐसा वह अजायबघर है। आत्मा अजायब घर है ऐसा लिया है। यह इनका खास शब्दप्रयोग है। आत्मा अजायब घर है। अद्भुत से अद्भुत !! जिसके गुणधर्मों को देखा जाये तो वह अद्भुत से अद्भुत तत्त्व है। जिसे कहने को भाषा-शब्द असमर्थ साबित होते हैं। केवल जीव को कुतूहल उत्पन्न हो कि जिसको भाषा से कहा नहीं जा सकता वह वस्तु अंतर में कैसी है ? और तो और यह चीज कोई दूसरी नहीं है, स्वयं ही है। वह स्वयं चीज कैसी है ?

**‘उसे तो देखता नहीं...’** उसे देखने की दरकार तक नहीं करता। **‘और पैसे मेरे, राग मेरा, ऐसे जीवन की ज्योति को कहाँ उलझा दी है।’** कैसे शब्द निकले हैं ‘गुरुदेवश्री’ के। **‘जीवन की ज्योति को कहाँ उलझा दी है...’** द्रव्यमरण का कारण जो भावमरण है, इसका यहाँ पर संकेत किया



है। आत्मा जो ज्ञान व सुख की जीवंत ज्योति है, जिससे यह तत्त्व जी रहा है, वह उसका स्वभाव है जिससे वह सदाय हयात रहता है। जीवत्वशक्ति नाम की आत्मा में शक्ति है जिससे वह अनादिअनन्त जीता है, कभी मरता नहीं। फिर भी इसे भूलनेवाला जीव मरणतूल्य दुःख का अनुभव करता है, जिसे लोग मृत्यु कहते हैं। द्रव्यमरण को सब समझते हैं, भावमरण को नहीं समझते।

उसको यहाँ कहते हैं कि **'जीवन की ज्योति को कहाँ उलझा दी है...'** वहाँ उसका जीवन मुरझा गया है। अटक गया है। किसमें ? कि बाह्य पदार्थों में। जो कि इस आत्मा से सर्वथा भिन्न होने पर भी, अन्य होने पर भी, अपने रूप उसका अनुभव करता है। वहाँ उसने **'जीवन की ज्योति को कहाँ उलझा दी है, और आत्मा का खून कर रहा है।'** किसी दूसरे का खून करते हुए किसीको देख ले तो भी रोंगटे खड़े हो जाये, देख न सके। अरे..! मनुष्य प्राणी नहीं, पशु-पक्षी को मारते हुए भी कोई देख ले तो आदमी को तीव्र आघात लग जाये। आर्यता है न ? देख नहीं सकता। ये लोग जो मांस आदि खाते हैं वे लोग तो प्राणी को मारते हैं न ? शिकार करके खाते हैं। निर्दोष प्राणी की गरदन मरोड़ दे। देखनेवाला काँपने लगे।

यहाँ कहते हैं कि तेरे ज्ञान और आनंद प्राण की गरदन तू मरोड़ रहा है। निर्दोष तत्त्व जो आत्मा है, कि जिससे निर्दोष ज्ञान और निर्दोष सुख की उत्पत्ति होती है। 'श्रीमद्जी' ने कहा न, 'निर्दोष सुख, निर्दोष आनंद लो गमे त्यांथी भले पण ए दिव्य शक्तिमान जेथी जंजीरे थी नीकळे।' पंद्रह-सोलह वर्ष की उम्र में इतना विवेक था। **'बहु पुण्य केरा पूंजथी...'** सोलह साल की उम्र में कविता बनायी है। सत्ररह वें साल पहले मतलब ज्यादा कम नहीं ले तो भी सोलहवाँ वर्ष तो होगा न ?

मुमुक्षु :- गमे त्यांथी...?

पूज्य भाईश्री :- 'गमे त्यांथी' मतलब जहाँ से मिले वहाँ से। जहाँ है वहाँ से। आत्मा का निर्दोष सुख और निर्दोष आनंद आत्मा के अलावा तो कहीं मिलेगा नहीं। और अन्यत्र प्रकार से जो भी सुख व आनंद की तुने कल्पना की है, वहाँ तुझे निर्दोष सुख और निर्दोष आनंद नहीं मिलेगा। सदोष परिणाम से तुने अपने माने हुए आनंद को, भले ही तुझे वास्तविक आनंद लगता हो परन्तु इसमें सदोषता है। यह बात तो दूर नहीं की जा सकती। वह तो पूर्व के एक पद आगेवाली पंक्ति में एक बात आयी है कि, **'लक्ष्मी अने अधिकार वधता शुं वध्युं ते तो कहो, शुं कुटुम्ब के परिवार थी वधवापणुं ए नय ग्रहो'** जैसे मिले, सत्ता मिली। दोनों, इसके अलावा कुटुम्ब-परिवार में भी बहुत से सभ्य बढ़े। क्या बढ़ा ? इसे न्याय से नक्की तो करो। वहाँ न्याय पकड़ते हैं।

'वधवापणुं संसारनुं नरदेह ने हारी जवो' यह भव खो देना। 'वधवापणुं संसारनुं नरदेहने हारी जवो, एनो विचार नहीं अहोहो एक पल तमने हवो' एक पल भी इसका विचार नहीं आता ? न्याय से विचार तो कर, ऐसा कहते हैं। इतनी असरकारक उनकी (शैली) Tone है कि, कोई एक बार वेगपूर्वक जाता हो उसे खड़ा रख दे। कि, तू ठहर जरा। एक क्षण विचार कर कि, ये जितना कुछ मिला इससे तेरी आत्मा में क्या आया ? कि तू खाली का खाली रह गया। इन सबसे तू शून्य है, अभी भी इन सबसे तू शून्य है और इन सबमें ममत्व करने से, अपनत्व करने से तेरी पूरी आयु बीत गई, तो तू एक नरभव को हार गया है, मनुष्यभव को हार गया है। हार गया है इसलिये कहते हैं, बहुत विचक्षण थे, कि आदमी जब हार जाता है तब इसके बदले में उसे कुछ नहीं मिलता। ये जुएँ में हार जाते हैं कि नहीं ? हारता है तब क्या है ? कि इसके बदले में उसे कुछ नहीं मिलता।

कोई आदमी बाजार से चीज़ खरीदे तब असली चीज़ के बजाय नकली माल निकले, तब भी कुछ तो हाथ लगता है जबकि, यहाँ कुछ हाथ नहीं लगता। इसीतरह इधर इसके हाथ कुछ नहीं लगा। पूरा मनुष्यभव, कि जिस मनुष्यभव में अपना हित-अहित का विचार कर सके ऐसा पूरा बुद्धिचातुर्य उसे प्राप्त था, उस योग को जीवने खो दिया। फिर तो पशु-पक्षी में प्रायः जीव जाते हैं। वहाँ बहुत जगह हैं। जहाँ जीव को विचारशक्ति नहीं रहती। जो विचारशक्ति चारोंगतियोंमें से मनुष्यपने में है वैसी विचारशक्ति अन्य तीन गतियों में नहीं है। देव में भी नहीं है तो तिर्यच, नारकी में होने का प्रश्न नहीं है।

मुमुक्षु :- देव को विचारशक्ति नहीं है ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं-नहीं। विचारशक्ति तो सब जीवों को है, परन्तु जितनी विचारशक्ति, हित-अहित का विवेक करने की शक्ति, सुख-दुःख का विवेक करने की शक्ति जितनी मनुष्यगति में है ऐसी अन्य तीनमें से एक भी गति में नहीं है। ऐसी परिस्थिति है।

मुमुक्षु :- अवधिज्ञान हो तो भी ?

पूज्य भाईश्री :- अवधिज्ञान हो तो भी वह राग-द्वेष में निमित्त होता है। यह मेरा मित्र था और यह मेरा शत्रु था ऐसे राग-द्वेष का निमित्त वह होता है। ज्ञान का उघाड है, बहिर्लक्षी ज्ञान का उघाड है वह राग-द्वेष का उत्पादक है। ज्ञान का विकास है। एक तरफ से देखे तो वह ज्ञान का उघाड नाम विकास है। ज्ञानगुण वहाँ विकसित है। फिर भी इसकी दिशा उलटी होने से वह जीव को दुःख का कारण होती है, या विशेष मलिन परिणाम की उत्पत्ति का वह कारण होता है। इसलिये उसे अनुकूल नहीं है, अपनी शांति के लिये वह प्रतिकूल है। स्वयं की शांति के लिए वह अनुकूल नहीं है अपितु प्रतिकूल है। सब बुद्धिवालों की ऐसी परिस्थिति है। अपने देवलोक

को छोड़ीये यहाँ पर भी हीनाधिक बुद्धि के विकास संपन्न मनुष्य होते ही हैं न ? इसमें अधिक बुद्धिमान अगर आत्महित की ओर नहीं झुकते हैं तो विशेषतः आत्मा का अहित कर लेता है। क्योंकि वह अधिक जोर से उलटी दिशा पकड़ते हैं।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- विचारशक्ति नाम हिताहित का विचार करने की शक्ति। मेरा हित किसमें है ? और मेरा अहित किसमें है ? इसका विचार करने की शक्ति। इतनी बुद्धि की समतुला जिसको कहते हैं, Balance कहे, वह मनुष्यगति में है, देवगति में नहीं है। इसका आपको कारण बता दूँ। यहाँ पर भी पुण्य के विशेष उदयवाले को कितनी उपाधि होती है और पाप के उदयवालों को भी कितनी उपाधि होती है। इस पर से उनका नाप निकाल लीजिये। तो वे लोग तो कहाँ के कहाँ पहुँच गये हैं।

यहाँ पर भी जिसको पुण्य का उदय हो उनका ऐसा प्रकार बनता है कि उन्हें फुरसत नहीं मिलती है। भाई ! बहुत काम में हैं... बहुत काम रहता है मरने की फुरसत नहीं है। छोटे-छोटे काम तो दूसरों को सौंप देते हैं। मुख्य-मुख्य कार्य इतने देखने पड़ते हैं। एक, दुकान - दो दुकान, यहाँ... यहाँ... वहाँ... फिर क्या हो ? दौड़धाम नहीं होगी तो क्या होंगा ? यहाँ भागना है... यहाँ भागना है... मात्र जंजाल... जंजाल... होता तो है पुण्य का उदय, पूर्व पुण्य का उदय होता है। कि बुद्धि से होता होगा ? बुद्धिवाले तो कितने ही भटक रहे हैं। परन्तु जीव इसमें अटक जाता है। तीव्र परिणाम से फँसता है। इसीतरह पाप में भी ऐसे तीव्र परिणाम होते हैं। पाप के उदय में। वहाँ जीवको अपना हित कैसे करूँ ? किसतरह करूँ ? इसका विचार करने का अवकाश तक प्राप्त नहीं होता।

मनुष्य में भी मध्यम प्रकार के उदयवालों की

(शेष अंश पृष्ठ संख्या-५ पर)

**द्रव्यदृष्टि प्रकाश पत्रांक-५१ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन, दि.५-९-१९९१**

दो वर्ष के बाद का पत्र है। इस दौरान आ गये हैं। उनसाठ में आ गये हैं। उस परिचय के बाद का, मेरे परिचय के बाद का (पत्र है।)

मुमुक्षु :- साठ में (परिचय में आये) ?

पूज्य भाईश्री :- हां, साठ में परिचय में आये, बस ! इकसठ में यह पत्र है। त्रेपन और सात, साठ, साठ में आये थे। सात वर्ष बाद आये थे।

मुमुक्षु :- सोलह में आये थे।

पूज्य भाईश्री :- हां सोलह में। इकसठ का यह पत्र है। साठ में आये तब मिले थे।

**'पूज्य गुरुदेवश्री सुख-शांति में विराजते होंगे। साधर्मीजन समवसरण जैसे वातावरण में उनकी दिव्यध्वनि जैसी अमृतवाणी का लाभ लेकर अनंतसुख प्राप्त करें, यह ही भावना है।'**

**'आपका पत्र दिनांक १५-७ का मिला।'** पांच दिन में जवाब लिखा है, तुरन्त ही। १५-७ का पत्र है, उत्तर २०-७ को तुरन्त ही लिखा है। **'इसके पहले तो कोई नहीं मिला था।'** इसके पहले एक (पत्र) लिखा था, परन्तु उन्हें नहीं मिला, किसी भी कारण से। इसके पहले एक पत्र लिखा अवश्य था। इस १५-७ के पत्र में ऐसा लिखा था कि इससे पत्र लिखा है, परन्तु तुम्हारा उत्तर नहीं है, इसलिए दूसरा लिखता हूँ। इसलिए यह लिखा है कि **'इसके पहले तो कोई नहीं मिला था।'**

**'हीन पुण्ययोग होने से, सोनगढ़ प्रति के विकल्प की प्रधानता नहीं होने से...'** अभी दोनों बातें साथ हैं। एक तो हीन पुण्ययोग है, दूसरा सोनगढ़ प्रति के मेरे विकल्प में भी इतनी अधिक प्रधानता नहीं है। **'अभी तक मैं उधर नहीं आ सका,...'** अभी तक मैं वहाँ आ नहीं सका। **'इसका अत्यंत खेद है।'** और इसका मुझे खेद होता है।

**'गये तीन माह से कुछ ऐसे योग हुए,...'** विगत तीन महीनों में जो धटित हुई हैं, उनकी

बात करते हैं। **'प्रथम मेरे पिताजी का स्वर्गवास होना,...'** उनके पिताश्री १९६१ के साल में तीन माह पूर्व स्वर्गवास पाये हैं। **'द्वयम् एक माह पहले...'** दूसरा मेरा एक महिना पहले **'मेरे शरीर के छूटने जैसा योग हो गया था...'** मेरा शरीर छूट जाए ऐसा योग भी बना।



**'कुछ व्यक्तियोंने मेरे पास एक बैग देखकर, उसमें रकम नहीं होते हुए भी रकम के भ्रम से मेरे पेट में ९ इंच गहरा खंजर मार दिया।'** नौ इंच जितना खंजर पेट में घुसा दिया था, खंजर मारकर खींच लिया था। उन लोगों के हाथ में खंजर नहीं आया, इसलिए उसने जो वापिस खींचा, उससे आंतड़िया बहुत कट गयी। यदि खंजर मारकर भाग गये होते या लूट लेते तो इतनी Injury नहीं होती। वापिस खींचा है, उसमें अन्दर आंतड़िया कट गयी है। **'९ इंच गहरा खंजर मार दिया, डॉक्टरों को इजीली...'** Easily अर्थात् शीघ्र; अंग्रेजी शब्द है। **'पल्स (Pulse) तक हाथ नहीं आयी थी।'** जब अस्पताल पहुँचे, डॉक्टर पहले नब्ज देखता है। बेसुध हो गये थे, रास्ते में ही बेसुद्ध हो गये थे। नब्ज हाथ में नहीं आयी थी। नब्ज चली गयी थी, क्योंकि अन्दर खून बहुत चला गया था, अन्दर ही अन्दर डबरे भर गये थे।

**'ऑपरेशन आदि होकर अस्पताल में रहना पड़ा। आज ही घर से बाहर इस एक्सीडेन्ट के बाद पहले-पहले निकल रहा हूँ।'** यह एक्सीडेन्ट होने के बाद हम २०-७ को पहले पहले ही बाहर निकले हैं। तत्पश्चात् तत्त्व का विषय शुरू होता है। एक प्रश्न रखा था। वह प्रश्न स्वयं ने दोहराया है और उस प्रश्न के उत्तर रूप शेष पत्र का (भाग है)। (विशेष लेंगे)।

लिखा था कि-जैनदर्शन सत्य है वह मुझे बैठता है। मुझे तो गुरुदेवसे मार्ग प्राप्त हुआ था, उसपर विचार करके तदनुसार प्रयत्न करनेपर अनुभूति हुई। पीछे वैसा संक्षेपमें लिखा था। दृष्टि, प्रयत्न आदि सब गुरुदेवके प्रतापसे हुए हैं।

(स्वानुभूतिदर्शन-२७१)



प्रश्न :- सम्यग्दर्शनसे पूर्व क्या भावना होती है ?

समाधान :- पहले ऐसी भावना होनी चाहिये कि मैं ज्ञायकतत्त्व हूँ, यह सब कुछ मैं नहीं हूँ। सम्यग्दर्शनका उपाय भेदज्ञानकी धारा एवं स्वानुभूति है, वह कैसे प्रगट हो वैसा प्रयत्न होना चाहिये। ज्ञायककी ओर कैसे दृष्टि जाय ? भेदज्ञानकी धारा कैसे प्रगटे ? स्वानुभूति कैसे हो ? - ऐसी भावना, श्रुतका चिन्तन-अभ्यास-सत्समागमकी भावना यह सब पहले होते हैं। ज्ञायककी महिमा, ज्ञायकस्वभाव कैसे ग्रहण हो उसकी भावना-गहरी जिज्ञासा, तथा प्रतिक्षण 'मुझे आत्मा ही चाहिये, अन्य कुछ नहीं', 'मुझे आत्मा बगैर चैन नहीं पड़ता' - ऐसा शुरुमें लगना चाहिये।

(स्वानुभूतिदर्शन-२७२)



प्रश्न :- विकल्प कैसे दूर हों ?

समाधान :- अपनी पर्याप्त तैयारी हो तब विकल्प दूर होते हैं। अनादिकाल से एकत्वबुद्धिका अभ्यास है, शरीरके प्रति एकत्वबुद्धि है। प्रतिक्षण शरीर सो मैं और मैं सो शरीर, विभाव सो मैं और मैं सो विभाव-ऐसी एकत्वबुद्धि है। वह एकत्वबुद्धि टूटे और स्वभावकी महिमा आये कि- 'मैं तो एक ज्ञायक हूँ - इसप्रकार स्वभावकी लगन लगे, अंतरसे छटपटी लगे तो विभावका रस झर जाता है, उतर जाता है। यद्यपि पीछे अमुक विभाव खड़ा रहता है, परन्तु उसका सब रस फीका पड़ जाता है और उसे अपने स्वभावकी महिमा-प्रेमके

बिना कहीं नहीं रुचता-इतनी तैयारी हो तब ज्ञायककी दृष्टि होती है। ज्ञायककी दृष्टि कब हो ? - स्वभावकी महिमा आये बिना तथा विभावका रस उतरे बिना ज्ञायककी दृष्टि नहीं होती। बाह्यमें दृष्टि जाती है उसका सब रस उतर जाये और स्वभावकी महिमा आये तो विभावका रस टूट जाय। स्वभावकी लगन लगे तो विभावका रस निरस हो, और विभावका रस निरस हो तो स्वभावकी दृष्टि प्रगट हो और विकल्प टूटें।

(स्वानुभूतिदर्शन-२७३)



प्रश्न :- प्रारम्भ तो विकल्पसे ही करना पड़ता है न ?

समाधान :- मैं शुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसे विकल्प प्रारम्भमें हुआ करते हैं, परन्तु विकल्पके पीछे निर्विकल्पतत्त्व है ऐसा उसका ध्येय होना चाहिये। (विकल्प तो बीचमें आते हैं।) तथापि विकल्पमात्रसे नहीं होता, 'मैं तो निर्विकल्पतत्त्व हूँ' ऐसा ध्येय होना चाहिये। 'ज्ञायक हूँ' ऐसे विकल्प आये वह मैं नहीं हूँ, मैं तो निर्विकल्पता एवं आनन्दादि गुणोंसे भरपूर ज्ञायक हूँ वह ध्येय होना चाहिये। विकल्पमात्र करनेसे 'मैंने सब कर लिया' ऐसी दृष्टि नहीं होनी चाहिये; अभी तो गहराईमें पहुँचना बाकी ही है।

(स्वानुभूतिदर्शन-२७४)



## पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :- आप बारम्बार कहते हैं कि देव-शास्त्र-गुरुको हृदयमें स्थापित करके मुक्तिकी ओर प्रयाण करना, और श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव पर्यायको गौण करनेको कहते हैं; तो इन दोनों बातोंकी सन्धि कैसे की जाय ? - हमें उलझन होती है।

समाधान :- देव-गुरु-शास्त्रको हृदयमें रखनेका अर्थ ऐसा है कि जो स्वयं आगे बढ़ना चाहता है उसे देव-शास्त्र-गुरु क्या कह रहे हैं, उन्होंने क्या मार्ग बतलाया है, उसे हृदयमें रखकर-उसका आशय ग्रहण करके-मुक्तिकी ओर प्रयाण करते रहना; परन्तु उससे शुभभावमें अटक जाना ऐसा उसका अर्थ नहीं है। स्वयं द्रव्यदृष्टिपूर्वक स्वरूपमें लीन होता हो तब शुभविकल्पमें रुक जाना ऐसा उसका अर्थ नहीं है। देव-शास्त्र-गुरु ही बतला रहे हैं कि शुभविकल्प वह विभाव है और तू सबसे निराला निर्विकल्पतत्त्व है। तू हमारे ऊपरसे भी दृष्टि हटा ले, रागका भाव छोड़ दे और वीतराग हो जा;- ऐसा देव-शास्त्र-गुरु स्वयं बतला रहे हैं; इसलिये प्रयोजन तो वीतरागता करनेका है। परन्तु साधक है इसलिये पहलेसे वीतरागता पूर्ण नहीं हो जाती और उसका उपयोग बाहर आता है। बेदज्ञानकी धारा चलती हो तब भी शुभके अनेक प्रकारके विकल्प होते हैं; इसलिये शुभभावमें देव-शास्त्र-गुरुको अपने साथ रखना। तू अपने आप-अपनी मतिकल्पनासे मार्ग मत ढूँढना। देव-शास्त्र-गुरु क्या कह रहे हैं उसका तू आशय समझकर उस मार्गपर चलना-मुक्तिका प्रयाण चालू रखना। देव-शास्त्र-गुरु क्या कहते हैं उस आशयको समझकर फिर स्वभावके साथ मिलान करके, स्वयं अपनेसे निर्णय करके, निश्चित करके मुक्तिका प्रयाण चालू रखना। अपनी मति-कल्पनासे मार्गपर मत चलना ऐसा तात्पर्य है।



पर्यायके ऊपरसे दृष्टि छूटकर, मैं शुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ-ऐसे नयपक्षके विकल्प तथा गुणभेदके विकल्प भी छूट

जाते हैं तब द्रव्यदृष्टि होती है, वह मुक्तिका मार्ग है-ऐसा देव-शास्त्र-गुरु बतलाते हैं। इसलिये वे क्या कह रहे हैं उस आशयको समझकर मुक्तिकी ओर प्रयाण चालू रखना ऐसा कहनेका आशय है।

पुनश्च, क्षपकश्रेणि चढ़कर बारहवें गुणस्थानमें पहुँचे उससे पूर्व बीचमें द्रव्य-गुण-पर्यायके अबुद्धिपूर्वक विचार आते हैं, श्रुतके विचार आते हैं, वे विचार टूटकर पूर्ण वीतराग हो तब केवलज्ञान होता है। वे श्रुतके विचार वस्तुस्थिति अनुसार होते हैं, अन्य प्रकारके नहीं होते। इसलिये जिस मार्गपर महापुरुषोंने प्रयाण किया उसी मार्गपर चलना ऐसा उसका तात्पर्य है। (स्वानुभूतिदर्शन-२७०)



प्रश्न :- जैनदर्शन सत्य है, यह बात मुझे बैठती है-ऐसा आप कहती थीं, तो वह किस प्रकार बैठती थी ?

समाधान :- मुझे अंतरसे ऐसा आता था; परन्तु यह बात सम्यग्दर्शनके बादकी है। उससे पूर्व तो मैंने खूब विचार-मंथन करके निर्णय किया था। जब प्रश्नोत्तर तथा चर्चा होती तब उसमें-यही स्वभाव हो सकता है, जाननेवालेका स्वभाव ऐसा ही हो, जो स्वभाव हो वह आकुलता रहित हो, जो विभाव है वह आकुलतारूप है, जो दुःखरूप हो वह अपना स्वभाव नहीं होता। - ऐसे अनेक प्रकारसे विचार करके निश्चित किया हुआ था। तत्पश्चात् अंतरमें धारा प्रगटी और अनुभूति हुई उसके अर्थमें मैंने

(शेष अंश पृष्ठ संख्या-२० पर)

---

जिनशासन उद्योतकर, स्वानुभूतिमय जिनधर्म प्रभावक,  
निश्चयरत्नत्रय विभूषित, अध्यात्मयोगी, अद्भुत  
ज्ञान-ध्यानमय जीवन व्यतीत करनेवाले गुरुवर्य तारणहार  
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की १२३ की मंगल जन्मजयंती प्रसंग  
पर उनके चरणोंमें भावभीगी वंदना।



अनेक शताब्दियों के इतिहास को देखा जाये तो ऐसे तीर्थकर द्रव्य का उदय हो और इतने-इतने सालों तक सम्यग्दर्शन जैसे प्रयोजनभूत विषय पर उपदेश चला हो ऐसा इतिहास में ढूँढने पर भी नहीं मिले ऐसा है। जिन्हें ऐसा योग उपकारी हो उन्हें तो अनंत तीर्थकर से अधिक लगते हैं। जिसे गोली लगे उसके संसार की मृत्यु हो गई। उसका तो अनंत तीर्थकरो से जो काम नहीं हुआ वह हो गया।

(- पूज्य भाईश्री शशीभाई)

बंबई, मगसिर वदी ९, सोम, १९४९

उपाधिका वेदन करनेके लिये अपेक्षित दृढ़ता मुझमें नहीं है, इसलिये उपाधिसे अत्यंत निवृत्तिकी इच्छा रहा करती है, तथापि उदयरूप जानकर यथाशक्ति सहन होती है।

परमार्थका दुःख मिटनेपर भी संसारका प्रासंगिक दुःख रहा करता है, और वह दुःख अपनी इच्छा आदिके कारणसे नहीं है, परंतु दूसरेकी अनुकंपा तथा उपकार आदिके कारणसे रहता है; और इस विडंबनामें चित्त कभी कभी विशेष उद्वेगको प्राप्त हो जाता है।

इतने लेखसे वह उद्वेग स्पष्ट समझमें नहीं आयेगा, तथापि कुछ अंशमें आप समझ सकेंगे। इस उद्वेगके सिवाय दूसरा कोई दुःख संसारप्रसंगका भी मालूम नहीं होता। जितने प्रकारके संसारके पदार्थ हैं, उन सबमें यदि अस्पृहता हो और उद्वेग हो तो वह अन्यकी अनुकंपा या उपकार या वैसे कारणसे होता है, ऐसा मुझे निश्चित लगता है। इस उद्वेगके कारण कभी आँखोंमें आँसु आ जाते हैं, और उन सब कारणोंके प्रति वर्तन करनेका मार्ग अमुक अंशमें परतंत्र दिखायी देता है। इसलिये समान उदासीनता आ जाती है।

ज्ञानीके मार्गका विचार करते हुए ज्ञात होता है कि किसी भी प्रकारसे यह देह मूर्च्छापात्र नहीं है, उसके दुःखसे इस आत्माको शोक करना योग्य नहीं है। आत्माको आत्म-अज्ञानसे शोक करनेके सिवाय दूसरा शोक करना उचित नहीं है। प्रगट यमको समीप देखते हुए भी जिसे देहमें मूर्च्छा नहीं रहती, उस पुरुषको नमस्कार है। इसी बातका चिंतन करते रहना हमें, आपको, प्रत्येकको योग्य है।

देह आत्मा नहीं है, आत्मा देह नहीं है। घटादिको देखनेवाला जैसे घटादिसे भिन्न है, वैसे ही देहको देखनेवाला, जाननेवाला आत्मा देहसे भिन्न है, अर्थात् देह नहीं है।

विचार करते हुए यह बात प्रगट अनुभवसिद्ध होती है, तो फिर इस भिन्न देहके स्वाभाविक क्षयवृद्धि-रूपादि परिणाम देखकर हर्ष-शोकवान होना किसी प्रकारसे संगत नहीं है; और हमें, आपको वह निर्धार करना, रखना योग्य है, और यह ज्ञानीके मार्गकी मुख्य ध्वनि है।

व्यापारमें कोई यांत्रिक व्यापार सूझे तो वर्तमानमें कुछ लाभ होना संभव है।



ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अप्रैल-२०१२) का शुल्क श्री लक्ष्मीबेन खीमजीभाई गंगर, पार्ला, मुंबई (मो.९८२०३६५६८३, ०२२ ६१६१५९९, ०९९८७३६५२२३) के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।